भाग – 5

ओ३म्

धर्म-शिक्षा

धर्म-शिक्षा

(कक्षा-5)

डॉ. तुलसीराम (भू.पू. अंग्रेजी विभागाध्यक्ष)
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
के निर्देशन में यशपाल शास्त्री तथा डी. ए. वी. पब्लिक स्कूलों
के मनोनीत शिक्षकों द्वारा सम्पादित

प्रकाशन विभाग
डी.ए.वी. कालेज प्रबन्धकर्तृ समिति
आर्य समाज भवन, यू० पी० ब्लॉक
पीतमपुरा, दिल्ली-110088

पुनः संस्करणः जनवरी 2008

मुद्रक— न्यू युनाइटेड प्रोसेस
ए 26 फेस 2 नारायणा इण्डिस्ट्रयल एरिया,
नई दिल्ली–110028

विषय सूची

किसी देश की महानता उस देश की लम्बाई चौड़ाई पर अवलम्बित नहीं होती बल्कि वहाँ के मनुष्यों के चरित्र पर अवलम्बित होती है ।

प्रस्तावना

अध्यापकों से –

आर्य समाज मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली के किसी भी वार्षिक उत्सव के अवसर पर आयोजित होने वाले दयानन्द बाल मेले में डी०ए०वी० स्कूलों के छोटे छोटे बच्चों की गीत, भाषण, मन्त्र पाठ आदि में प्रभावपूर्ण प्रस्तुति को देखकर कोई भी आश्चर्य, हर्ष एवं उत्साह से पुलकित हो सकता है । छोटी कक्षाओं के नन्हें नन्हें बालकों को वेदमन्त्रों का पाठ शुद्ध रूप में एक स्वरता के साथ करते हुए देखकर इस विश्वास में कोई न्यूनता अथवा आशंका नहीं रह पाती कि हमारे धर्म शिक्षक तथा अन्य अध्यापक कितनी लगन के साथ बच्चों में धार्मिक रुचि एवं नैतिक आदर्शों के प्रति आस्था उत्पन्न कर रहे हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक में इसी विश्वास के सहारे स्तर का कुछ उन्नयन किया गया है । इसमें सन्ध्या के पूरे मन्त्र हैं जो सब के सब याद भले ही न हों पायें किन्तु इनका उच्चारण करना आ जाये, ऐसी आशा की जा रही है । पाँच गेय गीतों तथा तीन कहानियों के अतिरिक्त तीन लेख भी यहाँ दिये गये हैं । चार पाठों का सम्बन्ध आचरण और सिद्धांत से है । पाँच पाठों में आर्य पुरुषों के उदात्त जीवन को प्रस्तुत किया गया है । इस प्रकार इस पुस्तक में जीवन को प्रेरणा देने वाला विषय पूर्व पुस्तकों के अनुपात में कुछ अधिक है किन्तु यह ध्यान पूर्ण रूप में रखा गया है कि विषय कहीं भी बोझिल या उबाऊ न बने ।

आशा है इस के पाठों के माध्यम से विद्यार्थियों में अच्छे संस्कारों की छाप और भी गहरी हो सकेगी ।

विद्यार्थियों से –

माता–पिता और गुरुजनों के चरण छूना, हाथ जोड़ कर और झुक कर नमस्ते कहना, कक्षा में अध्यापक महोदय के आने पर खड़े होना और आदर में सिर झुका लेना आदि क्रियाएँ अभिवादन कहलाती है । जो अपने से विद्या में, अनुभव में, पदवी में तथा आयु में बड़े हैं उनका अभिवादन करना धर्म है ।

अभिवादन से चार वस्तुऔं की प्राप्ति होती है– आयु,विद्या, यश और बल की ।

बड़ों से मिलने वाला आशीर्वाद और शाबाशी आयु को बढ़ाते हैं । अभिवादन करने वाला उनके स्नेह का पात्र बन जाता है । वे अपने जीवन के अनुभवों का सार उसे सिखा देते हैं । विद्वान् बना देते हैं । जगह जगह उसकी प्रशंसा करते हैं, इससे उसका नाम फैलता है, यश बढ़ता है । बड़ों से मिला हुआ स्नेह अस्वास्थ्य लाने वाली आदतों से बचाता है और स्वस्थ रहने का गुर सिखा देता है । इस प्रकार बल बढ़ता है । केवल शारीरिक बल ही नहीं अपितु मानसिक और आत्मिक बल भी बढ़ता है ।

धर्म शिक्षा इस प्रकार व्यक्ति को अभिवादनशील बनाती है । मनुस्मृति में कहा है –

अभिवादनशीलस्य, नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ।।

अथर्ति– जो अभिवादन करता है और सदा वृद्धों की सेवा करता है उसकी चार चीज़ें बढ़ती हैं – आयु, विद्या, यश और बल ।

वेदालोक

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मामृतं गमय

हे प्रभो ! मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो,
अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो
मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो ।

पाठ १

याचना



हे प्रभो आनन्ददाता ! ज्ञान हमको दीजिये ।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिये ।।१।।
लीजिये हमको शरण में, हम सदाचारी बनें ।
ब्रह्मचारी धर्म रक्षक वीरव्रत धारी बनें ।।२।।
हिन्द में पैदा हुए हैं हिन्द की सन्तान हैं ।
हिन्द की सेवा करें, वरदान ऐसा दीजिये ।।३।।
प्रेम की गंगा बहे दिल में हमारे रात दिन ।
तुमको कभी भूलें नहीं, सद्ज्ञान ऐसा दीजिये ।।४।।

अभ्यास

(१) इस प्रार्थना में प्रभु से क्या देने और क्या दूर करने को कहा गया है ?
(२) प्रभु की शरण में जाकर हम क्या बन सकते हैं ?
(३) इस प्रार्थना में देश के लिये क्या माँग की गई है ?
(४) यहाँ किस सद्ज्ञान की माँग की गई है ?
(५) इस प्रार्थना को कंण्ठस्थ करो और गुरु जी को सुनाओ ।

पाठ 2

गायत्री मन्त्र का महत्त्व

मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो न : प्रचोदयात् ।

अर्थ

हे रक्षक ! सर्वाधार ! दुःखविनाशक ! सुखदाता प्रभो ! स्वयं प्रकाशमान् आपके उस अपनाने योग्य तेज को हम धारण करें, जो हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरणा देता रहे ।

महत्त्व

गायत्री मन्त्र चारों वेदों का सार है । यह गुरु मन्त्र है । इस मन्त्र में परम पिता परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि हे प्रभो ! हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दो ।

इस मन्त्र की महिमा बताते हुए स्वयं वेद ने कहा है कि यह द्विजों को पवित्र करने वाला है । आयु, प्राण, प्रजा, पशु द्रव्य, कीर्ति और ब्रह्म ज्ञान को देने वाला है । मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में लिखा है कि जो साधक प्रातः काल शान्त और पवित्र स्थान पर पहुँचकर गायत्री मन्त्र का जप करता है उस पर घी, मधु और दधि की वर्षा होती है अर्थात् उसे पौष्टिक, स्वादु, तथा हितकर भोजन की जी भर प्राप्ति होती है ।

कहा जाता है कि इस गायत्री मन्त्र के जप से स्वामी विरजा नन्द को उस ज्ञान की प्राप्ति हुई थी जिसके द्वारा वे दयानन्द जैसे शिष्य को देश और जाति की सेवा के लिये तैयार कर पाये ।

महात्मा खुशहाल चन्द (आनन्द स्वामी) गायत्री मन्त्र के बडे

भक्त थे । उन्होंनें बहुत बार अपने जीवन की एक घटना का वर्णन किया है । वे पढ़ाई में बहुत अच्छे नहीं थे । प्रतिदिन स्कूल में जाकर पाठ न सुना पाते थे । इस कारण उन्हें बेंच पर खड़ा होना पड़ता था । अध्यापक की ओर से शिकायती पत्र भी घर पहुँचते रहते थे । एक बार वे बहुत दुःखी थे । संयोग वश एक आर्य संन्यासी स्वामी नित्यानन्द जी उनके घर आये । उन्होंने इन्हें उदास देख कर पूछा– "बेटा, तुम इतने उदास क्यों हो ?" इन्होंने रोते रोते सारी बात बता दी । स्वामी जी ने कहा– "बेटा, गायत्री मन्त्र का मन लगाकर जाप करो । तुम्हारा कष्ट दूर हो जायेगा"। स्वामी जी ने उन्हें अर्थ भी समझा दिया । बालक खुशहाल ने जप करना शुरु कर दिया । कुछ ही दिनों बाद इसका परिणाम सामने आने लगा । उनकी बुद्धि निखरने लगी । वे पाठ में आगे रहने लगे । घर पर प्रशंसा के पत्र पहुँचने लगे और उन्हें दूध जलेबी जो उन्हें विशेष प्रिय थी मिलने लगी । तब से लेकर जीवन के अन्तिम दिन तक वे इस मन्त्र का रोज जाप करते थे । जिन्होंने आनन्द स्वामी जी की कथाएं सुनी हैं या उनसे सम्बन्धित पुस्तकें पढ़ी हैं वे जानते हैं कि महात्मा आनन्द स्वामी का जीवन कितना ऊँचा था । उन्होंने समाज को कितना और क्या कुछ दिया । उनका ज्ञान, मनोबल और तपोबल गायत्री का ही प्रसाद था ! बच्चों को एवम् बड़ों को गायत्री का जाप अवश्य करना चाहिये ।

अभ्यास

(१) गायत्री मन्त्र और उसका अर्थ सुनायें ?

(२) वेद ने इस मन्त्र को क्या क्या प्रदान करने वाला बताया है ?

(३) मनुस्मृति का गायत्री मन्त्र के बारे में क्या मत है ?

(४) स्वामी विरजानन्द किस मन्त्र का जप किया करते थे ?

(५) महात्मा आनन्द स्वामी को गायत्री जप का क्या लाभ हुआ ?

पाठ ३
आर्यसमाज के नियम
(सातवें से दसवें तक)

आर्य समाज के दस नियम हैं । आर्य समाज क्या मानता है और आर्य समाज के सदस्य को कैसा आचरण करना चाहिए, यह पहले छह नियमों में बताया गया है । अन्तिम चार नियमों का सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्था एंव सामाजिक व्यवहार से है । सदस्य को समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन कैसे करना चाहिये, यह इन नियमों में बताया गया है । ये चार नियम इस प्रकार हैं –

(७) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिये ।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न होना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

समाज में प्रेम तथा धर्म का प्रसार भाषणों से नहीं अपितु प्रेम और धर्म के व्यवहार से ही संभव है । यदि हम चाहते हैं कि दूसरे लोग हमारे साथ प्रेम करें और ईमानदारी का व्यवहार करें तो हमें भी सभी के साथ वैसा ही वर्तना चाहिये । सब के साथ प्रेम और ईमानदारी का व्यवहार करना चाहिये । किन्तु यदि कोई दुष्ट अपनी दुष्टता से बाज़ नहीं आवे तो उसे सही मार्ग पर लाने का उपाय यही

है कि उसके साथ यथायोग्य व्यवहार किया जाय । जब समझाना काम नहीं कर पाता तो डाँट से काम लेना पड़ता है ।

विद्या जीवन को सामाजिक उन्नति से लेकर मोक्ष तक ले जाने का साधन है अतः स्वार्थ और परमार्थ दोनों दृष्टियों से इसकी वृद्धि करना आवश्यक है पर कभी कभी समाज में विद्या के नाम पर अविद्या का प्रसार होने लगता है । धर्म के नाम पर अधर्म और साधुता के नाम पर पाखण्ड को स्थान मिलने लगता है । ये विद्या के शत्रु हैं । अतः विद्या और अविद्या के समझने में सतर्क रहना चाहिये । ऐसा विवेक हो जाने पर विद्या की वृद्धि से पूर्व अविद्या का नाश करना चाहिये । अच्छे सिद्धान्तों के मण्डन से पहले गन्दी रू ढ़ियों का खण्डन अपेक्षित है । अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । अविद्या का नाश होगा तो विद्या की वृद्धि होगी और विद्या की वृद्धि होगी तो अविद्या का नाश होगा ।

केवल अपनी उन्नति से सन्तुष्ट होना स्वार्थ है । इसमें सामाजिकता की भावना नही है । स्वार्थ धर्म भी नहीं है क्योंकि धर्म अभ्युदय का अर्थात् अपनी और सब की उन्नति का सन्देश देता है । समाज के प्रति हम अपना कर्त्तव्य तभी पूरा करेंगे जब पूरे समाज की उन्नति के लिये प्रयत्न करें, सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझें । अकेले उन्नति करेंगे तो जियेंगे कैसे ?

राजनीतिक और सामाजिक स्वतन्त्रता का अर्थ मनमानी करना नही हैं । मनमानी करने पर तो सारे समाज में अराजकता फैल जायेगी समाज के सर्व हितकारी नियम पालने में व्यक्ति को परतन्त्र ही रहना चाहिये अर्थात् समाज के नियमों को तोड़ना नहीं चाहिये, निष्ठापूर्वक उनका पालन करना चाहिये । हमें सर्वहितकारी अर्थात् सबकी

भलाई के कर्मों को करना चाहिये । भले कार्य अनन्त हैं, असंख्य हैं, इनमें से अपनी और दूसरों की भलाई के लिये हम कौन सा कार्य करें इस चुनाव में सब स्वतन्त्र रहें ।

अभ्यास

(१) इन नियमों को याद करके गुरु जी को सुनाओ ।

(२) दूसरों के साथ हमें कैसा व्यवहार करना चाहिये ?

(३) विद्या की वृद्धि के लिये अविद्या का नाश क्यों आवश्यक है ?

(४) सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझने का क्या भाव है ?

(५) हम किस प्रकार के नियम पालने में स्वतन्त्र हैं ?

सतर्कता से अवसर की ताक में रहना, कौशल और साहस से अवसर को प्राप्त करना, शक्ति और इच्छा के द्वारा अवसरों को सर्वोत्तम सफलता पर पहुँचाना—निश्चय ही सफलता को देने वाले प्रधान सद्गुण हैं ।

पाठ ४

मूलशंकर का गृह त्याग और गुरु दक्षिणा

शिवरात्रि के जागरण काल में शिवपिण्डी पर चूहे का उत्पात देखकर बालक मूलशंकर के हृदय में सच्चे शिव का स्वरूप जानने की भावना पैदा हुई थी । इसका समाधान पाने के लिये उसने अपना मन पढ़ाई में लगा लिया किन्तु बहन और चाचा की मृत्यु ने मृत्यु की समस्या भी सामने उपस्थित कर दी । अब तो मूल शंकर का मन संसार से विरक्त हो गया । वह घर छोड़ने का मन बनाने लगा । इस पर पिता ने उसे बलपूर्वक विवाह के बन्धन में बाँधना चाहा । परिणामस्वरूप मृत्यु पर विजय पाने की प्रबल इच्छा लेकर मूलशंकर ने घर त्याग दिया ।

इस समय मूलशंकर की आयु बाईस वर्ष की थी । इन्होंने अपना नाम शुद्ध चैतन्य रख लिया और गुरु की खोज में निकल पड़े । अपने रेशमी वस्त्र तथा आभूषण इन्होंने साधुओं को दे दिये । ज्ञानी साधु की खोज में वे सिद्धपुर के मेले में गये हुए थे कि एक परिचित व्यक्ति ने इन्हें पहचान कर इनके पिता के पास सूचना भेज दी । पिता इन्हें साधु वेश में देखकर बहुत गर्म हुए । उन्होंने इनके गेरूए कपड़े फाड़ डाले, कमण्डल तोड़ दिया और इन्हें सिपाहियों के पहरे में रख दिया । रात के तीन बजे जब सिपाही सोये हुए थे ये दौड़ लगाकर कुछ मील निकल गये और दिन चढ़ जाने पर एक मन्दिर के पास घने वृक्ष पर छिप कर बैठ गये । वहाँ से सिपाहियों के निराश हो वापस चले जाने पर शुद्ध चैतन्य ने अपनी पैदल यात्रा आरम्भ कर दी और फिर परिवार वालों से कभी नहीं मिले ।

घर के बन्धनों से मुक्त हो शुद्ध चैतन्य नर्मदा नदी के किनारे स्थित योगियों के चक्कर लगाने लगे । लगभग आठ वर्ष तक वे नर्मदा तट पर घूमते रहे । यहीं स्वामी पूर्णानन्द से उन्होंने संन्यास की दीक्षा ली और दयानन्द नाम ग्रहण किया । आश्रम मर्यादा के अनुसार पहले ब्रह्मचारी रहते हुए तो वे भिक्षा नही माँग सकते थे । स्वयं भोजन बनाना आवश्यक था । स्वयं भोजन बनाने में उनका बहुत समय नष्ट हो जाता था । अध्ययन और ध्यान में बाधा पडती थी । पर संन्यासी हो जाने पर वे पक्वान्न (पके हुए अन्न) की भिक्षा के अधिकारी हो गये तथा सम्बन्धियों द्वारा पहचाने जाने का भय भी दूर हो गया । यहाँ उन्होंने कई योगियों से योग की शिक्षा प्राप्त की ।

नर्मदा तट से वे आबू गये और फिर सम्वत् १९१२ में हरिद्वार के कुम्भ मेले पर पहुँचे । फिर ऋषिकेश, टिहरी, केदार घाट, गुप्त काशी, गौरी कुण्ड, भीम गुफा, त्रियुगी नारायण आदि स्थानों पर घूमे । औखीमठ के महन्त ने उन्हें मठ का उत्तराधिकारी बनाना चाहा । दयानन्द जी ने कहा 'इस मठ की जितनी सम्पत्ति है, मेरे पिता की सम्पत्ति उससे किसी अंश में कम नही थीं । जब मैं उसे लात मार छोड़ आया तो इस मठ की सम्पत्ति का मुझे क्या लोभ हो सकता है ।'

यहाँ से वे जोशीमठ और बदरी नारायण गये फिर अलखनन्दा के उद्‌गम स्थान पर पहुँचे । यहाँ बर्फ के टुकड़ों से उनका शरीर क्षतविक्षत हो गया, पर वे डाँवाडोल नही हुए । यहाँ से रामपुर, चिल्किया घाटी, काशीपुर, द्रोणसागर आदि स्थानों पर कई योगियों से मिलते हुए मुरादाबाद जा पहुँचे । मुरादाबाद से संभल होते हुए वे गढ़मुक्तेश्वर पहुँचे । यहाँ उन्होंने गंगा में बहते हुए एक शव का छेदन किया और हठयोग प्रदीपिका में अंकित नाड़ी चक्र से शव की नाडियों का मेल न देखकर हठयोग प्रदीपिका तथा इस प्रकार की अन्य कई पुस्तकों को शव के साथ ही गंगा में बहा दिया । इस के पश्चात् दयानन्द कानपुर, इलाहाबाद,

मिर्ज़ापुर होते हुए काशी पहुँचे और वहाँ एक मास रहे । यहाँ से वे नर्मदा के स्रोत की ओर चले । नर्मदा के कँटीली झाड़ियों वाले बीहड़ वनों में रीछ आदि हिंसक पशुओं का सामना करते हुए वे तीन वर्ष कहाँ और किस रूप में रहे वह अज्ञात है । इसी समय सं० १९१४ (सन् १८५७) का स्वतन्त्रता संग्राम हुआ । नई खोज से ऐतिहासिकों ने सिद्ध किया है कि ये तीन वर्ष स्वामी जी ने इस स्वतन्त्रता युद्ध में सक्रियभाग लेकर व्यतीत किये ।

इस लम्बे भ्रमण काल में स्वामी दयानन्द देश की धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति से भली भाँति परिचित हो चुके थे । उन्होंने निश्चय किया कि बिना गंभीर ज्ञान पाये देश में किसी प्रकार के सुधार और परिवर्तन के लिये आन्दोलन नहीं चलाया जा सकता । फलत: वे मथुरा में दण्डी स्वामी विरजानन्द की सेवा में पहुँचे और वहाँ लगभग तीन वर्ष तक गहन अध्ययन किया । इस समय उनकी आयु लगभग तीस वर्ष की थी । जब उन्होंने दण्डी स्वामी की कुटिया का द्वार खटखटाया था तो द्वार को बिना खोले ही दण्डी जी ने प्रश्न किया था "कौन है ?"। 'मैं कौन हूँ यही जानने के लिए तो आपकी शरण में आया हूँ' दयानन्द के इस उत्तर से गुरु समझ गये कि यह सच्चा शिष्य है । नि:संदेह गुरु ने उनको उनका अभीष्ट ज्ञान प्राप्त करा दिया ।

शिक्षा के पूर्ण हो चुकने पर जब दयानन्द गुरु की प्रिय वस्तु एक सेर लौंग लेकर गुरु दक्षिणा देने के लिए उनके सामने पहुँचे तो गुरु ने इस दक्षिणा से सन्तुष्ट न होकर उनका सारा जीवन ही गुरुदक्षिणा में माँग लिया । उन्होंने कहा– देश एवं जाति के उत्थान के लिए पाखण्डों, कुरीतियों, अन्धविश्वासों का खण्डन करो, सच्चे वैदिक धर्म का प्रचार करो । यह मेरा आदेश है । गुरुभक्त शिष्य ने गुरु की आज्ञा के सम्मुख सिर झुका दिया और वह देश तथा समाज को

अन्धविश्वासों की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए और निर्भीक भाव से सत्य धर्म का प्रचार करने के लिये निकल पडा ।

अभ्यास

(१) मूल शंकर ने घर कब छोड़ा ?

(क—शिवरात्रि की घटना को देखकर, ख—बहिन की मृत्यु से दुखी होकर, ग—चाचा की मृत्यु के पश्चात्, घ—विवाह के बन्धन का भय उपस्थित होने पर)

(२) सिद्ध पुर के मेले में पिता जी से पकड़े जाते समय मूल शंकर का नाम क्या था ?

(३) शुद्ध चैतन्य को संन्यास की दीक्षा किसने दी ?

(४) शुद्ध चैतन्य को संन्यासी बनने की आवश्यकता क्यों महसूस हुई ?

(५) स्वामी दयानन्द ने 'हठयोग प्रदीपिका' पुस्तक को गंगा में क्यों बहा दिया ?

(६) स्वामी जी के अज्ञात तीन वर्षों के बारे में ऐतिहासिकों की नई खोज क्या है ?

(७) कुटिया का द्वार खटखटाये जाने पर विरजानन्द जी ने क्या प्रश्न किया ?

(८) स्वामी दयानन्द ने क्या उत्तर दिया ?

(९) स्वामी दयानन्द गुरु दक्षिणा में क्या वस्तु लेकर गुरु के पास गये ?

(१०) दण्डी स्वामी विरजानन्द ने दयानन्द से गुरु दक्षिणा में क्या माँगा ?

पाठ—५

ऋषि महिमा

धन्य है तुझको ऐ ऋषि,
तूने हमें जगा दिया ।
सो सो के लुट रहे थे हम,
तूने हमें बचा दिया ।।१।।
अन्धों को आँखें मिल गईं
मुर्दों में जान आ गई ।
जादू सा क्या चला दिया,
अमृत सा क्या पिला दिया ।।२।।
वाणी में क्या तासीर थी
तेरे वचन में ऐ ऋषि ।
कितने शहीद हो गये,
कितनों ने सर कटा दिया ।।३।।
अपने लहू से लिख गया,
तेरी कहानी लेखराम ।
तूने ही लाला लाजपत,
शेरे बबर बना दिया ।।४।।
श्रद्धा से श्रद्धानन्द ने,
सीने पे खाई गोलियाँ ।
हँस हँस के हंसराज ने,

तन मन व धन लुटा दिया ।।५।।

तेरे दिवाने जिस घडी,

दक्षिण दिशा को चल दिये ।

हैरत में लोग रह गये,

दुश्मन का सिर चकरा गया ।।६।।

अभ्यास

(१) ऋषि महिमा गीत में ऋषि की वाणी की तासीर किस रूप में प्रकट की गई है ?

(२) अपने लहू से लेखराम ने किसकी कहानी को लिखा ?

(३) हँस हँस कर तन, मन व धन किसने लुटाया ?

(४) सत्यार्थ प्रकाश पर लगे प्रतिबन्ध को हटाने हेतु सत्याग्रह करने के लिए ऋषि के दीवाने किस दिशा को चल पड़े थे ?

(५) ऋषि ने लाला लाजपत राय को क्या बना दिया ?

सर्वोत्तम मनुष्य वे नहीं हैं जो अवसरों की बाट देखते रहते हैं, अपितु वे हैं जो अवसर को अपना दास बना लेते हैं ।

पाठ—६

अच्छा बालक

विश्वबन्धु अच्छा बालक है । सभी उससे प्यार करते है । विद्यालय में और मुहल्ले में उसकी प्रशंसा होती है । घर पर आने वाले मेहमान भी उसे अच्छा बताते हैं । उसे अपने यहाँ आने के लिये आमंत्रित करते हैं ।

विश्वबन्धु सदा सवेरे उठता है । रात सुख से बीती है इसके लिए वह परमात्मा का धन्यवाद करता है । दिन शुभ कर्मों में और सुख से बीते इसके लिए वह परमात्मा से प्रार्थना करता है । चारपाई से उठकर वह माता–पिता तथा बड़ों को नमस्ते कहता है । शौच और दातुन से निबट कर कुछ दूर भ्रमण करता है । फिर लौट कर, व्यायाम, स्नान और सन्ध्या करता है । हल्का कलेवा कर के विद्यालय में सुनाये जाने वाले पाठ को दुहराता है । विद्यालय जाकर वह वहाँ अपने अध्यापकों को आदरपूर्वक नमस्ते कहता है ।

विश्वबन्धु पढ़ने में मन लगाता है । शरारत नहीं करता । अपनें साथियों के साथ प्यार का व्यवहार करता है । पुस्तकों और कपड़ों को सफाई से रखता है । लिखते समय सुन्दर और साफ लिखता है । अध्यापक द्वारा प्रश्न किये जाने पर सीधा खड़ा होकर नम्रता से उत्तर देता है । यदि पढ़ाई की कोई बात अच्छी तरह समझ नहीं आती तो उसे पूछने में झिझक नहीं दिखाता । वह अपने साथियों की भी पढ़ाई में सहायता करता है ।

पढ़ाई समाप्त होने पर वह विद्यालय से सीधा घर आता है । घर आकर माता–पिता को फिर नमस्ते कहता है । भोजन करके कुछ

आराम करता है फिर घर का कुछ काम करके खेलने चला जाता है । वहाँ घण्टाभर खूब खेलता है । घर आकर गर्मियों के दिनों में फिर से स्नान करता है और फिर पढ़ने बैठ जाता है । रात के भोजन के बाद भी वह टहलना नहीं भूलता । वह शाकाहारी भोजन करता है । फल तथा दूध उसे अधिक पसन्द है । कभी कभी भुने हुए चने, गुड़ तथा गन्ने का भी आनन्द लेता है । चने चबाना और गन्ना चूसना वह दाँतों का व्यायाम मानता है ।

घर पर आये मेहमान की वह पूरी आवभगत करता है । उनसे मधुरता, आत्मीयता और आदर का व्यवहार करता है । उसकी इच्छा रहती है कि दिन में कोई न कोई अच्छा काम वह अवश्य करे । किस दिन कौन सा अच्छा कार्य किया है, इसे वह अपनी डायरी में लिखता भी है । रात को सोने से पहले वह कुछ पढ़ता है । दूरदर्शन के अच्छे कार्यक्रम का भी वह लाभ उठाता है किन्तु उसमें आने वाली फिल्म वह वही देखता है जिसके अच्छे होने के सम्बन्ध में उसके अध्यापक या माता पिता बता देते है । वह रात को बहुत अधिक नहीं जागता क्योंकि उसने स्कूल के पट पर लिखा हुआ वचन न जाने कितनी बार पढ़ा है कि 'जल्दी सोना और जल्दी जागना मनुष्य को स्वस्थ, सम्पन्न और बुद्धिमान् बनाता है ।' सोते समय वह फिर माता पिता को नमस्ते कहता है और परमात्मा से प्रार्थना करता है ।

अभ्यास

(१) विश्वबन्धु से सब प्यार क्यों करते हैं ?
(२) सवेरे उठने से लेकर विद्यालय जाने तक विश्वबन्धु की दिन चर्या क्या है ?
(३) विद्यालय में विश्वबन्धु किस प्रकार रहता है ?
(४) मेहमानों के साथ हमें कैसा व्यवहार करना चाहिए ?
(५) जल्दी सोने और जल्दी जागने का क्या लाभ है ?

पाठ—७

महात्मा सुकरात की सहनशीलता

महात्मा सुकरात प्राचीन यूनान के बहुत बड़े विद्वान् और दार्शनिक थे । सारा देश उनका आदर करता था । परन्तु उनकी पत्नी क्रोध की साक्षात् मूर्ति थी । वह हर समय लड़ती रहती थी । मीठा बोलना तो उसने सीखा ही नहीं था । प्रतीत होता था कि चीनी उसने कभी नहीं खाई, सदा कुनीन ही खाती रही ।

सुकरात घर पर मौन होकर बैठते तो वह चिल्लाना आरम्भ कर देती, "हर समय चुप ही बैठे रहते हैं ।" वे कोई पुस्तक पढ़ते तो चिल्ला उठती, "आग लगे इन पुस्तकों को । इन्हीं के साथ विवाह कर लेना था । मेरे साथ क्यों किया ?"

एक दिन सुकरात जब घर आये तो पत्नी ने इसी प्रकार बकना झकना प्रारम्भ कर दिया । उस समय सुकरात के कुछ विद्यार्थी और भक्त भी उनके साथ थे । उन्होंने उसके इस आचरण का बहुत बुरा माना । परन्तु सुकरात मौन बैठे रहे । पत्नी ने उन्हें मौन देखा तो उसके क्रोध का पारा और भी चढ़ गया और वह ऊँची ऊँची आवाज़ में बोलने लगी । सुकरात फिर भी चुपचाप बैठे रहे ।

सुकरात की चुप्पी से उनकी पत्नी क्रोध से इतनी पागल हो गई कि वह बाहर निकली और मकान के बाहर पड़ा हुआ गन्दा कीचड़ एक बर्तन में भर लाई । इस कीचड़ को उसने बड़ी तेज़ी से सुकरात के सिर पर उँड़ेल दिया । तब सुकरात हँसकर बोले, "देवी ! आज तो पुरानी कहावत गलत हो गई । कहावत है कि जो गरजते हैं वे बरसते नहीं, आज देखा कि जो गरजते है वे बरसते भी हैं ।"

सुकरात हँसते रहे परन्तु उनका एक विद्यार्थी क्रोध में आ

गया । उस विद्यार्थी ने चिल्लाकर कहा, "यह स्त्री तो चुड़ैल है, आपके योग्य नहीं ।" सुकरात बोले, "नहीं, योग्य है । यह ठोकर लगा लगाकर देखती रहती है कि सुकरात कच्चा है या पक्का ? इसके बार बार ठोकर लगाने से मुझे भी पता लगता रहता है कि मेरे अन्दर सहनशक्ति है या नहीं ।" सुकरात थोडी देर रुक कर फिर बोले, "याद रखो, यह मेरी पत्नी ही नहीं, मेरे बच्चों की माँ भी है ।"

अभ्यास

(१) महात्मा सुकरात की पत्नी का स्वभाव कैसा था ?
(२) सुकरात की पत्नी सुकरात से झगडने के लिए कौन से बहाने खोज लेती थी ?
(३) अपशब्द सुनकर भी जब सुकरात चुप ही रहे तो उनकी पत्नी ने क्या किया ?
(४) पत्नी द्वारा कीचड डाले जाने पर सुकरात ने क्या कहा ?
(५) सुकरात ने अपनी पत्नी की प्रशंसा किस प्रकार की ?

प्रत्येक आपत्ति शाप के समान नहीं होती । जीवन की प्राथमिक आपत्तियाँ बहुधा आशीर्वाद होती हैं । जीती हुई कठिनाइयाँ न केवल हमें शिक्षा ही देती हैं, बल्कि वे प्रयत्नों से हमें साहसी बनाती हैं ।

पाठ—८

बड़े घर के गायक

बादशाह अकबर के दरबार के प्रसिद्ध गायक थे—तानसेन । कहते हैं कि तानसेन जब राग मल्हार गाते थे तो वर्षा होने लगती थी । जब दीपकराग गाना आरम्भ करते थे तो दीपक जल उठते थे ।

एक दिन अकबर ने कहा—"तानसेन ! यह सब कुछ तुमने जिससे सीखा है, उसका संगीत हमें भी सुनवाओ ।" तानसेन ने कहा, "शहंशाह । मेरे गुरु स्वामी हरिदास हैं । वे संन्यासी है । उन्हें किसी से कुछ लेना नहीं है । इसलिए वे आपके दरबार में नहीं आयेंगे । स्वामी हरिदास वृन्दावन में यमुना तट पर पत्तों की झोंपडी में रहते हैं । अपने भक्ति संगीत से वे जंगल में मंगल मनाते हैं । किसी के लिए वे गाते नहीं । अपनी मौज से ग़ाते हैं । उनका दुतारा केवल अपने लिए या भगवान् के लिए ही है ।"

अकबर ने कहा—"वे नहीं आ सकते तो हम उनके पास चलेंगे । एक बार उनके दर्शन तो कर लें ।" तानसेन बादशाह को लेकर वृन्दावन के उस जंगल में गये जहाँ स्वामी हरिदास रहते थे । देखा—स्वामी हरिदास कुटिया के बाहर ध्यान में मग्न बैठे है, चुपचाप, शान्त । एक दुतारा उनके पास पडा है परन्तु वह भी वे आवाज़ ।

बादशाह ने धीरे से कहा, "तानसेन ! यमुना तट पर आकर भी क्या हम प्यासे ही जायेंगे ? क्या कोई ऐसा उपाय नहीं कि स्वामी

हरिदास गाने लगें ?" तानसेन ने कहा, "प्रयत्न करता हूँ शहंशाह, आप चुपचाप खडे रहिए ।"

तानसेन ने कुछ सोचा और फिर अपनी सितार उठाकर बजाना शुरू कर दिया । पहले थोडा ठीक बजाया फिर जान बूझकर गलत बजाने लगे । स्वामी हरिदास ने सुना तो झुंझला उठे, बोले "ग़लत बजाते हो तानसेन ! सुनो ।" और वे अपना दुतारा उठाकर बजाने लगे । उसके साथ साथ गाने लगे । सारा वन उस गायन से गूँज उठा । वृक्ष और पौधे झूम उठे । जंगल के हिरन स्वामी हरिदास के पास आकर खड़े हो गये । पक्षी शान्त हो गये । ऐसा प्रतीत होता था जैसे चलती हुई हवा भी ठहर गई हो । बादशाह मस्त हो गये । कितनी देर हो गई, यह भी उन्हें पता नहीं रहा । अन्ततः जब हरिदास ने गाना बन्द किया तो बादशाह और तानसेन उन्हें प्रणाम करके वापस चल पडे ।

रास्ते भर बादशाह बोल नहीं सके । संगीत की मधुर ध्वनि उनके कानों में अभी तक गूँज रही थी । रात्रि के समय बादशाह ने कहा—"तानसेन ! तुम बहुत अच्छा गाते हो । भारत वर्ष के सबसे बड़े गायक हो तुम । फिर भी तुम्हारे गाने में वह रस क्यों नहीं, वह मस्ती क्यों नहीं जो स्वामी हरिदास के गाने में है ?"

तानसेन ने हाथ जोडकर कहा, "शहंशाह ! मुझ में और स्वामी हरिदास में बहुत अन्तर है । मैं हूँ दिल्लीपति का गवैया, दिल्ली पति के लिए गाता हूँ । स्वामी हरिदास जगत् पति के गायक है । उसके लिए गाते हैं जो करोडों दिल्लीपतियों का पति है । वे बड़े घर के, ईश्वरीय दरबार के गायक हैं, मैं छोटे दरबार का गायक हूँ ।"

अकबर ने सुना, सोचा, समझा और चुप हो गया । धीरे से उसने अपने मन में कहा, "जो भगवान् के गुण गाता है उसकी वाणी में रस होगा ही ।"

अभ्यास

(१) तानसेन किसके दरबार के गायक थे ?

(२) तानसेन के गुरु का नाम क्या था ?

(३) तानसेन बादशाह को जंगल में क्यों ले गये ?

(४) स्वामी हरिदास से गाना सुनने के लिए तानसेन ने क्या चाल चली ?

(५) स्वामी हरिदास का गाना सुनकर अकबर ने क्या कहा ?

(६) अकबर के प्रश्न का तानसेन ने क्या उत्तर दिया ?

(७) "यमुना तट पर आ कर भी क्या हम प्यासे ही जायेंगे ?" इन शब्दों का क्या अर्थ है ?

आज के दिन हम अपने भविष्य का निर्माण करते हैं, अपने भाग्य के जाले को बुनते हैं । आज के दिन आगे के सारे समय के लिए हम पवित्रता अथवा पाप में से एक को चुनते हैं ।

पाठ—९

गुण—गान

प्रेमी बनकर प्रेम से, ईश्वर के गुण गाया कर ।
मन मन्दिर में गाफिला भक्ति दीप जलाया कर ।।
सोने में तो रात गुज़ारी दिन भर करता पाप रहा,
इसी तरह बरबाद तू बन्दे, करता अपना आप रहा ।
प्रातः समय उठ ध्यान से, सत्संग में तू जाया कर
प्रेमी बनकर प्रेम से, ईश्वर के गुण गाया कर ।।१।।
नर तन के चोले का पाना, बच्चों का कोई खेल नहीं,
जन्म जन्म के शुभकर्मों का होता जब तक मेल नहीं ।
नर तन पाकर प्रेम से उत्तम कर्म कमाया कर
प्रेमी बनकर प्रेम से, ईश्वर के गुण गाया कर ।।२।।
पास तेरे है दुखिया कोई, तूने मौज उड़ाई क्या ?
भूखा प्यासा पड़ा पड़ोसी तूने रोटी खाई क्या ?
पहले सबसे पूछकर, फिर तू भोजन खाया कर
प्रेमी बनकर प्रेम से, ईश्वर के गुण गाया कर ।।३।।

अभ्यास

(१) मन—मन्दिर में 'भक्ति दीप जलाने' का क्या अर्थ है ?
(२) सारी ज़िन्दगी किस तरह बर्बाद हो जाती है ?
(३) जीवन को बर्बादी से बचाने का यहाँ क्या उपाय बताया गया है ?
(४) फिर से नर—तन पाने के लिए मनुष्य को क्या करना चाहिए ?
(५) मौज उड़ाने और भोजन खाने से पहले किस बात का ध्यान रखना चाहिए ?

पाठ—१०

अहिंसा

किसी को मारनें या सताने की इच्छा हिंसा कहलाती है और ऐसी इच्छा का न होना अहिंसा कहलाता है । हिंसा हत्या को जन्म देती है । हत्या करना पाप है । हिंसा के बिना हत्या नहीं हो सकती इसलिए अहिंसा को परम धर्म कहते है— अहिंसा परमो धर्मः ।

महात्मा गाँधी व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में अहिंसा और सत्य पर बड़ा बल देते थे । उन्होंने स्वाधीनता का संग्राम भी इन दो हथियारों से ही लड़ा । उनकी मान्यता थी कि हमें सत्य का सदा आग्रही होना चाहिए । यदि सत्याग्रह से काम न चले तो असहयोग करो । बुरे का साथ देना छोड दो । यदि फिर भी सफलता न मिले तो अवज्ञा करो, आज्ञा न मानो । जिनके साथ संघर्ष है, उन से संघर्ष करो किन्तु किसी भी दशा में अहिंसा का पल्लू मत छोड़ो ।

अहिंसा के तीन रूप हैं जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं । किसी को अपने शरीर द्वारा कष्ट पहुँचाने की इच्छा न करना शारीरिक अहिंसा है । वाणी से कष्ट पहुँचाने की इच्छा न करना वाचिक अहिंसा है और किसी का मन से भी बुरा न चाहना मानसिक अहिंसा है । अतः हमें मनसा, वाचा, कर्मणा तीनो रूपों में हिंसा से बचना चाहिए ।

हमारा मन एक ऐसी चीज़ है जिसका तार दूसरे लोगों के, यहाँ तक कि पशु—पक्षियों तक के मनों के तार के साथ जुड़ा रहता है । जब हम किसी के लिए बुरा सोचते हैं तो उसके मन में भी हमारे लिए दुर्भाव पैदा होने लगते हैं । यदि हमारा मन किसी के लिए सद्भाव युक्त है तो उसके मन में हमारे प्रति किसी कारण कोई द्वेष भाव भी हो तो वह अपने आप समाप्त हो जाता है । वह भी हमारे प्रति सद्भाव

रखने लगता है । नफरत और प्यार में, घृणा और प्रेम में विजय सदा प्यार या प्रेम की ही होती है । वन में तपस्या करने वाले ऋषि मुनियों के आश्रम में सिंह आदि पशु उसी प्रकार आचरण करते थे जैसे हमारे घरों में पालतू पशु करते हैं ।

महात्मा आनन्द स्वामी ने इस सम्बन्ध में अपने जीवन कीं एक सच्ची घटना का उल्लेख किया है—

संन्यासी बनने के बाद उन्हें एक लगन रही कि जगद्र गुरु दयानन्द ने जिन जिन स्थानों पर तप किया उन्हें देखें । उत्तर काशी में एक बहुत वृद्ध साधु ने बताया कि मुल्ला चट्टी से आगे बूढ़े केदार की ओर जायें तो वहाँ एक स्वामी गंगागिरि जी रहते हैं जो महर्षि दयानन्द के साथी थे । आनन्द स्वामी उत्तर काशी से मुल्ला चट्टी गये । सतरह मील ऊपर वहाँ इतना घना जंगल है कि दिन के समय भी मार्ग दिखाई नहीं देता । तीन घण्टे पश्चात् एक साधु के दर्शन हुए । ये उन गंगागिरि के शिष्य थे । वे आनन्द स्वामी को कुटिया पर ले गये और वह शिला दिखाई जिस पर बैठकर स्वामी दयानन्द ध्यान लगाते थे । आनन्द स्वामी ने भी उस पर बैठकर ध्यान लगाया । ध्यान के पश्चात् आँखें खोलने पर उन्हें एक विशाल शेर अपनी ओर आता दिखाई दिया । साधु महात्मा अपनी कुटिया के बाहर बैठे थे । इन्होंने आवाज देकर कहा कि यह सिंह आ गया है । वे बोले—घबराने की आवश्यकता नहीं । यह सिंह तुम्हें कुछ नहीं कहेगा ।" आनन्द स्वामी आधी आँख से सिंह की ओर देखते रहे । वह उनके पास से निकल कर उस साधु के पास चला गया । साधु ने उसकी पीठ सहलाई, उसके पाँव खुजाये, उसके सिर पर हाथ फेरा, उसे प्यार किया और शेर परे चला गया । इसी साधु ने बताया कि दयानन्द इसी प्रकार सिंहों से प्यार करतें थे ।

वास्तव में यदि हमारे मन में दूसरों को सताने की भावना न होकर प्यार की भावना है तो दूसरे के हृदय में भी इस भावना का

संचार होता है । अहिंसा को इसी लिए परम धर्म कहा गया है । अहिंसा से सब वैर, भय और आशंका दूर हो जाते हैं ।

अभ्यास

(१) अहिंसा का अर्थ बताओ ।
(२) अहिंसा के कितने रूप हैं और वे कौन–कौन हैं ?
(३) वाचिक हिंसा से क्या अभिप्राय है ?
(४) मानस अहिंसा किसे कहते हैं ?
(५) ऋषियों के आश्रम में हिंसक प्राणी भी पालतू से क्यों बन जाते हैं ?

कुछ मिनटों की देर ने कितनी आशा लतायें नहीं मुरझा दीं ? कुछ मिनटों की देर ने कितनेहँसतों को नहीं रुला दिया ? कुछ मिनटों की देर ने कितनों के जीवन को दुःखमय नहीं बना दिया ? कुछ मिनटों की देर ने कितने ही राष्ट्रों को गुलामी में नहीं डाल दिया ? फिर भी कुछ मिनटों के मूल्य को क्या तुम नहीं समझे ?

पाठ—११

स्वाध्याय

स्वाध्याय क्या है ? वेद, उपनिषद्, गीता, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, सत्यार्थ प्रकाश और इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थों को प्रतिदिन पढ़ना, प्रतिदिन उन पर विचार करना, यह स्वाध्याय है । थोड़ा पढ़ो या अधिक, पढ़ो अवश्य । आजकल तो लोग प्रातःकाल समाचार पत्रों को लेकर बैठ जाते है । समाचार पत्रों को भी समाज और संसार को जानने के लिए पढना चाहिए परन्तु स्वाध्याय का वास्तविक अर्थ उन ग्रन्थों का पाठ करना है जो सन्तों, महात्माओं, ऋषियों और योगियों के लिखे हैं। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि जो व्यक्ति प्रतिदिन अच्छे ग्रन्थों का पाठ करता है, उसे उतना ही पुण्य मिलता है जितना कोई व्यक्ति धन, अन्न, हीरे, सोने, मोती और पशुओं से भरी हुई सारी पृथिवी को दान करके प्राप्त करता है ।

महात्मा हंसराज जी के जीवन की एक घटना है उन्होंने डी० ए० वी० कालेज के लिए अपना जीवन दान दे दिया था । बड़े भाई मुल्खराज जी उन्हें चालीस रुपये मासिक देते थे । वे उस पर निर्वाह करते थे । एक बार भाई अप्रसन्न हो गये । उन्होंने सहायता के रुपये देना बन्द कर दिया । महात्मा जी के पास कोई पूँजी तो थी ही नहीं । घर में भी कुछ नहीं था । केवल छह आने थे उनके पास । घर में खाने को भी नहीं था । तीन दिन इसी प्रकार बीत गये । पत्रों में उन दिनों उनके विरुद्ध लेख छप रहे थे । घबराकर उन्होंने सोचा—"मैं यह कौन से मार्ग पर चल रहा हूँ ? इसमें दुःख ही दुःख है, सुख का नाम भी नहीं, तब इसे छोड़ क्यों न दूँ ?" इस विचार के उत्पन्न होते ही घबराहट के साथ अपने छोटे से कमरे में

टहलने लगे । इधर से उधर, उधर से इधर । चैन नहीं । मछली जैसे पानी के बिना तड़पती है, ऐसे उनका दिल तड़प रहा था । तभी वे अपने कमरे में रखी उस अलमारी के पास पहुँच गए जिसमें पुस्तकें रखी थीं । जैसे ही एक पुस्तक को निकालकर उसका एक पृष्ठ खोला, वहाँ लिखा था—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।"

अर्थात् तुम्हारा अधिकार कर्म में ही है फलों में बिल्कुल नहीं ।

इन शब्दों को पढ़ते ही उनकी घबराहट दूर हो गई । ऐसा अनुभव हुआ जैसे सच्चा और सीधा रास्ता मिल गया हो । ऐसा अनुभव हुआ जैसे कोई सामने खड़ा कहता हो, "अरे भाई, घबरा गया तो क्यों ? तेरा काम केवल काम करना है, उसके फल की चिन्ता करना नहीं । फल को भगवान् पर छोड़ दो, आगे बढ़ो । इसके पश्चात् फिर कभी उन्हें डगमगाना नहीं पड़ा, फिर कभी बेचैनी नहीं आई । यह है स्वाध्याय का फल ।

किन्तु यह स्वाध्याय का केवल एक अर्थ है, दूसरा अर्थ है अपने आपको पढ़ना, अपने—आपको देखना कि यह जो अपना—आपा है, यह ऊपर चला जा रहा है या नीचे गिर रहा है ? शुद्ध और पवित्र हो रहा है या गन्दा और मलिन ? परन्तु यह अपना आंपा क्या है ? यह स्थूल शरीर नहीं जिसे हम प्रतिदिन माँजते हैं और जो अन्त में राख हो जाता है । यह अपना आपा अत्यन्त सूक्ष्म है । यही सूक्ष्म शरीर है जो मन, बुद्धि और संस्कारों को लेकर हमारी आत्मा के साथ रहता है ।

इस सूक्ष्म शरीर को, मन, बुद्धि और संस्कारों को प्रतिदिन देखो । जैसे कोई पुस्तक पढ़ता है, वैसे प्रतिदिन पढ़ो । देखो कि इसमें

कोई मैल तो नहीं आ गया ? कोई गन्दा विचार तो नहीं आ गया ? पुराना मैल कम हुआ अथवा नहीं ? कोई शुभ विचार आया या नहीं ? कोई नई रोशनी जागी या नहीं ? यह है स्वाध्याय का अर्थ ।

यदि मैल बढ़ गया, कोई शुद्ध विचार नहीं आया तो सँभलो । इस सूक्ष्म शरीर को जो प्रतिदिन पढता है, प्रतिदिन देखता है वह कभी न कभी सँभलता है अवश्य । और जब सँभल जाता है तो ऊँचा उठता चला जाता है ।

अभ्यास

(१) स्वाध्याय का क्या अर्थ है ?
(२) महात्मा हंसराज जी क्यों घबरा गये थे ?
(३) गीता पुस्तक की किस पंक्ति को पढ़कर उनकी घबराहट दूर हुई ?
(४) अपने आप को पढने का क्या अभिप्राय है ?

ईश्वर एक बार एक ही क्षण देता है और दूसरा क्षण देने से पहले, पहले वाले क्षण को छीन लेता है ।

पाठ—१२

सत्संग का प्रभाव

महर्षि दयानन्द के कर्मठ अनुयायियों में पण्डित लेख राम का नाम स्वामी श्रद्धानन्द तथा महात्मा हंसराज के समान ही प्रसिद्ध है । वे वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए प्रायः सफर (यात्रा) ही करते रहते थे इसलिए आर्यमुसाफिर के नाम से मशहूर हुए । उनका जीवन बड़ा पवित्र था इसलिए उनके भाषण का सुनने वालों पर गहरा प्रभाव पडता था ।

आर्य समाज के ये महान् विद्वान् नेता ग्राम ग्राम में घूमकर प्रचार कर रहे थे । एक ग्राम में पहुँचे तो इस प्रदेश का डाकू मुगला भी उनके व्याख्यान को सुनने के लिए आ गया । इसके कई साथी भी दूसरे लोगों के साथ बैठ गये । ग्राम के लोगों ने जब मुगला को देखा और पहचाना तो उनके पैरों तले से धरती निकल गई । एक एक करके वे उठने लगे । पं० लेखराम जी व्याख्यान दे रहे थे । लोग उठकर जा रहे थे । उन्हें आश्चर्य हुआ कि यह क्या हो रहा है ? धीरे–धीरे सभी लोग चले गये । केवल मुगला और उसके साथी रह गये । पं० लेखराम जी भाषण देते रहे । वे कर्म के सम्बन्ध में बोल रहे थे कि:—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

अर्थात् जो भी शुभ या अशुभ कर्म तुमने किये हैं उनका फल भोगना पडेगा अवश्य । कर्म के फल से बचने का कोई मार्ग नहीं । दूसरे लोग न देखें, पुलिस न देखे, सरकार न देखे परन्तु याद रखो ! एक आँख है जो तुम्हें प्रति क्षण देख रही है । तुम्हारे हृदय के भीतर जो कुछ होता है, उसे भी वह जांनती है । उससे बचने का कोई मार्ग

नहीं । प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्म का फल वह देती है । वह आँख परमात्मा की है जो सर्वव्यापक है ।

व्याख्यान समाप्त हुआ तो मुगला ने पं० लेखराम जी के पास जाकर कहा, "आप कौन हैं ?" पं० जी ने कहा "मैं लेखराम हूँ ।" डाकू ने कहा, "मैं एकान्त में आपसे कुछ बातें पूछना चाहता हूँ । क्या आपसे मिल सकता हूँ ?" लेखराम जी ने कहा, "अवश्य मिल सकते हो । मैं आर्यसमाज में ठहरा हूँ, वहीं आ जाना ।"

रात्रि के समय मुगला और उसके साथी समाज के भवन में जा पहुँचे । ग्रामवालों ने समझा, आपत्ति आई; ये लोग बेचारे पण्डित जी को लूटने आये हैं । परन्तु मुगला ने हाथ जोडकर पण्डित जी से कहा, "आप तो कह रहे थे कि प्रत्येक कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है, तो क्या यह ठीक है ?" पण्डित जी ने कहा, "शत प्रतिशत ठीक है ।" मुगला बोला, "क्या प्रत्येक कर्म का फल भोगना पड़ेगा ? क्या बचने का कोई उपाय नहीं ?" पण्डित जी ने कहा, "कोई नहीं ।" मुगला ने कहा, "तो फिर क्या बनेगा ? मैं तो कई वर्ष से डाके मार रहा हूँ ।" पण्डित जी ने कहा, "आज से छोड़ दो । कल आर्य समाज में आओ, मैं तुम्हें यज्ञोपवीत दूँगा । इसके पश्चात् धर्म के मार्ग पर चलो ।" मुगला और उसके साथी दूसरे दिन आर्यसमाज में पहुँच गये । सबका जीवन बदल गया । यह सब सत्संग का प्रभाव था ।

अभ्यास

१. सत्संग शब्द का क्या अर्थ है ?
२. मुगला कौन था वह सभा में क्यों आया था ?
३. पं० लेखराम के किस वाक्य का मुगला पर विशेष प्रभाव पड़ा ?
४. मुगला ने पं० लेखराम से क्या कहा ?
५. पं० लेखराम ने मुगला को क्या सलाह दी ?

पाठ—१३

सेवा

मानसिक साधना के तीन सोपान हैं—स्वाध्याय, सत्संग और सेवा । इन में सेवा का महत्त्व सब से अधिक है । इसे सब कोई कर सकता है, आसानी से कर सकता है, अकेला भी और मिल कर सामाजिक रूप में भी । मनुष्य के पास तीन प्रकार की शक्ति होती है—बाहुबल, बुद्धिबल और धन बल । इस शक्ति को अपने लिए नहीं अपितु दूसरों की भलाई के लिए प्रयोग करना सेवा है । सेवा ही ईश्वर भजन (भज् सेवायाम्) भी है ।

महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के नियमों में यह बात स्पष्ट रूप में लिखी है, "संसार का उपकार और सामाजिक उन्नति करना ।" आर्यसमाज केवल इस देश के लिए नहीं है; सभी देशों के लिए है । किसी एक राष्ट्र के लिए नहीं है; सभी राष्ट्रों के लिए है । आर्यसमाज मनुष्य मात्र के लिये है । यह न धर्म है, न सम्प्रदाय अपितु एक आन्दोलन है जिसका उद्देश्य है सब मनुष्य को सुखी बनाना । जितनी शक्ति हमारे पास है उसे दूसरों की भलाई में लगाना । इस लिए महर्षि ने आर्यसमाज के नियमों में लिखा, "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए अपितु दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए ।"

यह है सेवा की भावना । सेवा से मन बहुत जल्दी शुद्ध होता है; अभिमान मिट जाता है । इससे पाप मिट जाता है । इसलिए जितनी भी शक्ति है उसकेअनुसार अपने जीवन में सेवा करनी चाहिए । और कुछ नहीं कर सकते तो अपने मुहल्ले के बच्चों को इकट्ठा करके उन्हें

पढ़ने में सहायता दो । पढ़ा नहीं सकते तो उन्हें दौड़ना सिखाओ, परेड करना सिखाओ । यह भी नहीं कर सकते तो उन्हें सभ्यता से उठना–बैठना, खाना–पीना सिखाओ । यह भी नहीं कर सकते तो आर्यसमाज मन्दिर में या किसी अन्य सत्संग भवन में पहुँच जाओ । अपने हाथ से वहाँ झाड़ू दो, लोगों के जूते सँभालने की सेवा करो । यह भी न हो सके तो बाज़ार में चले जाओ, जहाँ केले की दुकान है, वहाँ खडे हो जाओ । लोग दुकान से केले लेते है, वहीं छीलकर उसे खाते है और छिलके को सडक पर फेंक देते है । उन्हें रोको फिर भी यदि वे ऐसा करें तो इन छिलकों को उठाकर एक ओर रख दो ताकि वह किसी के पैर के नीचे न आए, किसी के फिसलने का कारण न बने । साधारण सी बात लगती है यह, परन्तु केले का छिलका गलत स्थान पर पड़ा रहा तो किसी का हाथ पैर टूट सकता है यहाँ तक कि किसी की जान भी जा सकती है ।

एक सज्जान शीशी उठाये पत्नी के लिए दवाई लेने डाक्टर के पास तेज़ी से जा रहे थे । रास्ते में केले का एक छिलका पाँव के नीचे आ गया, वे फिसल कर सडक पर गिरे । हाथ की शीशी टूट गई । टूटी हुई शीशी गर्दन में ऐसी जगह लगी कि बड़ी नस कट गई और उन्होंने वहीं दम तोड दिया । यदि उस छिलके को किसी ने उठा दिया होता तो एक आदमी की जान बच जाती । सेवा छोटी हो या बड़ी, सदा महान् होती है ।

आर्यसमाज देश के अन्दर बढ़ा तो निश्चित रूप से इसलिए कि उसने सेवा के कार्य को अपनाया । जहाँ कहीं, जब कभी, जो कोई कष्ट हुआ, वहाँ आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता पहुँच गये । भूचाल आये या बाढ़, अकाल पड़ जाय या बलवा (दंगा) हो जाये, आग लग जाये या पानी टूट पड़े, आंर्यसमाज के सेवक वहाँ पहुँचते हैं । अभी–अभी सन् १९९० में उत्तराखण्ड में भूकम्प आया तो आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि

सभा के प्रधान बाबू दरबारी लाल जी तथा मन्त्री श्री रामनाथ जी सहगल विशाल सहायता सामग्री लेकर अपने सहयोगियों समेत वहाँ जा पहुँचे । सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यकर्त्ता भी वहाँ पहुँचे । १९९३ में महाराष्ट्र के भूकम्प पीडितों की भारी सहायता की । अनाथ हुए बच्चों की रक्षा एवं शिक्षा हेतु शोलापुर में 'बाल सदन' की स्थापना की ।

सेवा से मानसिक बल बढ़ता है । मानसिक साधना पूरी होती है । सेवा मनुष्य को बहुत ऊपर ले जाती है । उसे सच्चा मानसिक और आत्मिक सुख प्रदान करती है ।

अभ्यास

(१) मन को जल्दी शुद्ध करने का साधन क्या है ?
(२) संसार का उपकार कैसे किया जा सकता है ?
(३) छोटी छोटी सेवाओं में किन्हीं दो का स्वरूप बताओ ।
(४) देश में आर्यसमाज के बढ़ने का कारण क्या था ?
(५) रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :—
सेवा से मानसिक..................बढ़ता है,
मानसिक.............पूरी होती है ।

कोई भी आदमी जब तक किसी चीज़ के लिए मेहनत नहीं करेगा तब तक वह चीज़ उसे मिल नहीं सकती ।

पाठ—१४

शरणागति

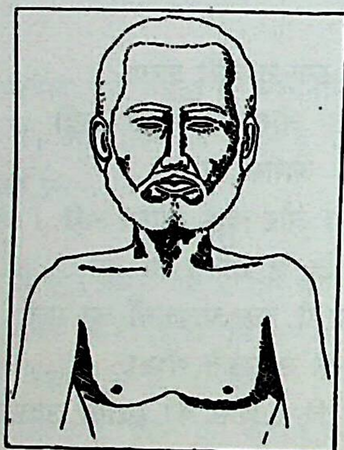
हमने ली है फकत इक तुम्हारी शरण
हे पिता और कोई सहारा नहीं ।
पतित पावन प्रभो ! आसरा दो हमें
आसरा और कोई हमारा नहीं ।।१।।
न तो विद्या, न बुद्धि, न भक्ति का बल
आत्मा पै चढा पापकर्मों का मल ।
बिन तुम्हारी दया के न सकते सँभल
तुमने किस किस को स्वामी उबारा नहीं ।।२।।
सारे जन्मों में भगवन् भटकता रहा
मुक्ति पाने को हरदम तरसता रहा ।
यह विनती है मेरी पिता मान लो,
हाथ आगे किसी के पसारा नहीं ।।३।।

अभ्यास

(१) भक्त 'पतित पावन प्रभु' से क्या माँग रहा है ?
(२) आत्मा पर कैसा मल चढ़ा हुआ है ?
(३)भक्त क्या पाने के लिए तरसता रहा है ?
(४) भक्त ने किन किन बातों में अपनी बल हीनता प्रकट की है ?
(५) भक्त ने केवल भगवान् की ही शरण क्यों ली है ?

पाठ–१५

स्वामी विरजानन्द सरस्वती



स्वामी विरजानन्द सरस्वती एक उच्चकोटि के विरक्त संन्यासी थे । इनका जन्म सन् १७७९ ई. में पंजाब प्रान्त में जालन्धर जिले के गंगापुर ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था । इनके पिता का नाम नारायण दत्त था । इनका बचपन का नाम बृजलाल था, ऐसा करतार पुर की एक बुढ़िया ने बताया । पाँच वर्ष की आयु में शीतला (चेचक) रोग से पीड़ित हो इनकी आँखें जाती रही । नेत्रहीन होने पर भी इनकी बुद्धि बडी तीव्र थी । एक दो बार सुने हुए मन्त्रों को वे ज्यों का त्यों दोहरा देते थे । आठ वर्ष की आयु में इनके यज्ञोपवीत तथा वेदारम्भ संस्कार कराये गये ।

नेत्रहीन बालक का सबसे बड़ा सहारा माता–पिता होते है । भगवान् ने विरजानन्द का यह सहारा भी छीन लिया । माता–पिता की मृत्यु से कोमलचित्त बालक को जो कष्ट उठाना पड़ा होगा, उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है । एक सहारा बड़ा भाई शेष था,

परन्तु उसे बृज लाल ने स्वयं त्याग दिया । भाई–भाभी के तिरस्कार पूर्ण व्यवहार से तंग आकर बारह वर्ष का नेत्रहीन बालक घर से निकल पडा ।

उन दिनों यातायात की सुविधा आज जैसी थी नहीं, फिर भी यह साहसी बालक अपने मार्ग पर बढ़ता चला गया । मार्ग में नाना कष्टों को सहता हुआ तीन वर्ष में ऋषिकेश जा पहुँचा । उस समय ऋषिकेश आज जैसा रमणीक स्थान न था । यह योगियों का योग स्थान मात्र था । वहाँ न कोई अन्न क्षेत्र था, न धर्म शाला थी, चारों और झाड़ियाँ थीं जिनमें पर्ण कुटिया बनाकर तपस्वी महात्मा तप करते थे । खाने पीने का साधन जंगली बेर आदि थे । यहाँ पहुँचने का कारण था, बालक के मन का संकल्प जो उसे संसार से बैरागी बनाकर योग साधना में लगने की प्रेरणा दे रहा था ।

यहाँ पर चारों ओर बृजलाल के तप की धूम मच गई । सभी तपस्वी उनके तप की बहुत प्रशंसा करते थे । उनकी बुद्धि तो पहले ही तीव्र थी, यहाँ गायत्री की साधना ने उसे और भी तीव्र कर दिया । लोग उन्हें प्रज्ञाचक्षु कहने लगे । सहसा एक रात स्वप्न में उन्होंने सुना, 'बृजलाल ! तुमने यहाँ जो कुछ प्राप्त करना था कर लिया अब तुम यहाँ से प्रस्थान करो ।' वे ऋषिकेश से चलकर हरिद्वार, कनखल आ गये । यहाँ आकर उन्होंने दण्डी स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से दीक्षा ली और उनसे पढ़ने लगे । उनका नाम बृजलाल के स्थान पर विरजानन्द रखा गया । पढ़ने के साथ साथ विरजानन्द जी पढ़ाने का कार्य भी निरन्तर करते रहे जिस से भोजनादि का निर्वाह आसानी से चलता रहा । वे भिक्षा माँगने को बुरा समझते थे । कनखल से चलकर विरजानन्द बनारस पहुँचे । वहाँ वे पं० विद्याधर जी के शिष्य बने और नियमित रूप से अध्ययन करने लगे । यहाँ पर वे व्याकरण के साथ साथ वेदान्त आदि दर्शनों का अध्ययन भी करने लगे । काशी से वे गया होते हुए कलकत्ता पहुँचे । आगे चलकर गंगातीर पर बने

सभी तीर्थों की यात्रा करते हुए एटा जिले के सोरों नगर में उन्होंने आसन जमाया । कुशाग्र बुद्धि होने के साथ साथ उनकी अध्यापन शैली ऐसी रुचिकर थी कि शीघ्र ही विद्यार्थी वर्ग पर उनकी धाक जम गई । इसके अतिरिक्त विरजानन्द छात्रों से बच्चों की तरह प्रेम करते थे । उनका सुख दुःख अपना समझते थे ।

यहीं दण्डी विरजानन्द जी की भेंट अलवर के राजा से हुई । वे उनकी विद्धत्ता से इतने प्रभावित हुए कि बहुत अनुनय विनय कर तथा प्रतिदिन उनसे पढ़ने की प्रतिज्ञा कर उन्हें अपने साथ लिवा ले गये । राजा नियम पूर्वक विरजानन्द जी से पढ़ने लगे । एक दिन राजा राग-रंग में पढ़ने की बात भूल गए । विरजानन्द ने उसी दिन अलवर छोड़ दिया और पुनः सोरों लौट आए । यहीं इनका एक शिष्य रामदास श्रद्धा पूर्वक इनकी सेवा करने लगा । कुछ दिन पीछे वे मुरसान और फिर भरतपुर होते हुए मथुरा आ विराजे । स्थायी रूप से यहीं इनकी पाठशाला स्थापित हुई और वे जीवन के अन्त तक यहाँ रहकर विद्यादान में लगे रहे । यहीं स्वामी दयानन्द जैसे अनोखे वैरागी सुधारक की इनसे भेंट हुई । इस गुरु को पाकर दयानन्द के मन की चिरकाल की अभिलाषा भी पूरी हुई ।

मथुरा में उस समय कोई पचास साठ नाना विषयों के विद्वान् रहा करते थे और हज़ारों छात्र विविध शास्त्रों का अध्ययन कर रहे थे । मथुरा का दर्जा काशी से कम नहीं था । शास्त्रार्थ को ही उस समय विद्वत्ता की कसौटी समझा जाता था । दण्डी विरजानन्द जी के शास्त्रार्थों की भी काफी धूम मची हुई थी । उनकी विद्वत्ता की सब पर धाक थी और इसलिए कुछ लोग उनके पाण्डित्य से ईर्ष्या भी करते थे । सेठ रामकृष्ण के मन में अपने गुरु रंगचारी के गुरु कृष्ण शास्त्री की झूठी प्रतिष्ठा स्थापित करने की लालसा थी । उन्होंने दण्डी जी को नीचा दिखाने का पूर्ण प्रयत्न किया । शास्त्रार्थ के नाम पर २०० रुपया रखवा लिया और बिना शास्त्रार्थ कराये कृष्ण शास्त्री को

विजयी घोषित कर दिया । लोभी पण्डित सभी तरह के अनर्थ करने को तैयार रहते थे । इससे स्वामी विरजानन्द जी के मन पर हर समय सच्चे वैदिक धर्म के प्रचार का विचार उठता रहता था । प्रतिदिन पढ़ने के लिए आने वाले छात्रों में से कोई भी इन्हें इस प्रकार का दिखाई न देता था । उन्होंने जयपुर के राजा रामसिंह को एक सार्वभौम सभा करने की सलाह दी । राजा साहब मान भी गये । पर स्वार्थी पण्डितों के कारण वह सभा न हो सकी ।

विरजानन्द जी के हृदय में निरन्तर एक ज्वाला सी दहकती रहती थी । वृद्धावस्था और नेत्रहीनता के कारण वे स्वयं लाचार थे । उसी समय दयानन्द जी इनके पास आये । दयानन्द को पाकर विरजानन्द ने कहा, "अन्धे को आज लाठी मिल गई है ।" उन्हें अपने मन की अभिलाषा पूर्ण होती दिखाई दी । तीन वर्ष केअध्ययन के उपरान्त जब स्वामी दयानन्द विदा लेने लगे तो विरजानन्द ने गुरु दक्षिणा के रूप में उनसे आर्यधर्म के प्रचार में अपना सर्वस्व अर्पित करने की प्रतिज्ञा करवाई ।

विरजानन्द भारत की स्वाधीनता के लिए प्रयत्नशील थे । स्वाधीनता के प्रथम संग्राम में उनके योगदान के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं । दिल्ली के बादशाह बहादुर शाह ने मथुरा के पास जंगल में स्वतन्त्रता के सेनानायकों की एक बैठक बुलाई थी । उस बैठक की अध्यक्षता के लिए इसी नेत्रहीन संन्यासी को पालकी में बिठाकर ले जाया गया था ।

स्वामी विरजानन्द पुरातन ऋषियों के भक्त थे । वे ऋषि ग्रन्थ पढ़ाते समय उनके अपमान के भय से उच्चासन पर नही बैठते थे, मूल से पढाकर समझाते थे । स्वर की मधुरता और उच्चारण की स्पष्टता से थोड़ी संस्कृत जानने वाला भी उनकी बात समझ लेता था । विद्यार्थियों के आचार विचार पर वे बहुत ध्यान देते थे । सभी छात्र एक सी योग्यता वाले नहीं होते, इसी से वे सबको अलग अलग पढ़ाते थे ।

पढ़ाते समय पाठ्य पुस्तक के अतिरिक्त देश की दशा, धर्महीन स्थिति उसके कारण और उपाय भी साथ साथ बताते जाते थे और ऐसा करते समय, विद्यार्थी से यही कहते, "इस समय जिस अग्नि को धूम्र रूप में तुम्हारे हृदयों में प्रविष्ट कर रहा हूँ, वह समय पाकर ज्वाला बनकर भारत भूमि से अधर्म का नाश कर देगी ।"

उनका रहन सहन बहुत सादा था । खाने में वे कभी केवल अन्न , कभी केवल दूध और कभी फलाहार करते थे । नेत्रहीन होने पर भी वे अपनी दिन चर्या बिना किसी की सहायता के सुगमता पूर्वक पूरी कर लेते थे । वीणा बजाने में भी वे अति निपुण थे ।

इस प्रकार निरन्तर आर्ष ग्रन्थों का प्रचार कर और अपने अधूरे काम का भार अपने सुयोग्य शिष्य ऋषि दयानन्द पर छोड वे ९० वर्ष की अवस्था में आश्विन बदी १३, संवत् १९२५ वि० सोमवार को इस धराधाम से दिवंगत हुए ।

अभ्यास

(१) विरजानन्द जी का बचपन का नाम क्या था ? वे नेत्रहीन कैसे हो गये थे ?

(२) उन्होंने गृहत्याग किस आयु में और क्यों किया ?

(३) बृजलाल ने ऋषिकेश क्यों छोड़ा ? उन्हें संन्यास की दीक्षा किसने दी ?

(४) विरजानन्द जी ने अलवर के राजा को पढ़ाना क्यों बन्द कर दिया ?

(५) ऋषि ग्रन्थ पढ़ाते समय विरजानन्द जी उच्चासन पर क्यों नहीं बैठते थे ?

(६) स्वामी दयानन्द ने विरजानन्द जी से कितने वर्ष विद्या ग्रहण की ? गुरु दक्षिणा के रूप में उन्होंने दयानन्द से क्या प्रतिज्ञा कराई ?

पाठ—१६

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी



स्वामी दयानन्द के कर्मठ अनुयायियों में पण्डित गुरुदत्त का विशिष्ट स्थान है । पं० गुरुदत्त का जन्म २६ अप्रैल १८६४ को मुल्तान नगर (अब पाकिस्तान) में हुआ था । जन्म काल से ही वे अत्यन्त मेधावी थे । विद्यार्थी जीवन में ही इन्होंने नये नये कीर्तिमान् स्थापित किये । सन् १८८६ में उन्होंने एम०ए० की परीक्षा दी और उसमें बी०ए० की तरह सर्वप्रथम रहे । एम०ए० में उनका विषय भौतिक विज्ञान था । इस परीक्षा में उन्होंने इतने अंक प्राप्त किये जितने इनसे पूर्व किसी विद्यार्थी ने प्राप्त नहीं किये थे । इस प्रकार इन्होंने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया । आश्चर्य तो यह था कि अध्ययन के दिनों में वे आर्यसमाज के कार्यक्रमों एवं उत्सवों में भी जाते रहे

थे । इनके सहपाठियों ने इन्हें कभी भी शिक्षा के विषयों की पुस्तकें पढ़ते नहीं देखा था ।

परीक्षा के पश्चात् दो तीन वर्ष पण्डित जी ने राजकीय कालेज लाहौर में भौतिकी के प्रोफ़ेसर के रूप में अध्यापन किया । यह पहले भारतीय थे जिनको सरकारी कालेज में यह पद मिला था । इससे पहले यहाँ के सब प्रोफेसर अंग्रेज़ ही होते थे । कुछ समय पश्चात् इन्होंने अनुभव किया कि विज्ञान के प्रोफेसर के रूप में सेवा करने के कारण इनको वैदिक धर्म के प्रचार एवं योगाभ्यास में बाधा आ रही है । अत इन्होंने सरकारी सेवा से त्यागपत्र दे दिया ।

इसके पश्चात् गुरुदत्त जी को अतिरिक्त सहायक (एक्स्ट्रा असिस्टेंट) कमिश्नर पद पर नियुक्ति हेतु प्रस्ताव प्राप्त हुआ और लाहौर के जिलाधीश ने इन्हें बुलाया भी, किन्तु पण्डित जी ने यह प्रस्ताव स्वीकार न किया । ऋषि ऋण से उऋण होने के लिए जो त्याग पण्डित जी में दिखाई देता है उसका उदाहरण अन्य ऋषिभक्तों में कम मिलता है ।

विज्ञान के विद्यार्थी होने के कारण पं० गुरुदत्त भी ईश्वर की सत्ता के प्रति पहले पूर्ण आस्थावान् नहीं थे । आर्यसमाज लाहौर की ओर से १८८३ में स्वामी दयानन्द की रुग्णावस्था में सेवा करने के लिए उन्हें अजमेर भेजा गया । वहाँ उन्होंने स्वामी जी की प्रभावशाली मृत्यु का दृश्य देखा । मौत के भय से बड़े बड़े योद्धा काँप उठते है । उसी मृत्यु का स्वामी जी ने हँसते हँसते स्वागत किया । "प्रभो ! तेरी इच्छा पूर्ण हो ।" यह कहकर प्राणायाम किया और प्राण छोड़ दिये । "यह अभय—कैसे ? क्यों ? कहाँ से ?" गुरुदत्त के हृदय में ईश्वर की सत्ता के प्रति सोया विश्वास जाग उठा । इस घटना ने इनके जीवन को एक नयी दिशा दी । इसके पश्चात् इनका सारा जीवन महर्षि दयानन्द के अपूर्ण कार्यों को पूर्ण करने में ही व्यतीत हुआ ।

अजमेर से लाहौर पहुँचकर पण्डित जी ने स्वामी दयानन्द के शिक्षा विषयक विचारों को कार्यान्वित करने के लिए लाला लाजपत राय एवं महात्मा हंसराज आदि महापुरुषों के साथ मिलकर दयानन्द ऐंग्लों वैदिक कालिज की स्थापना का कार्य आरम्भ किया । इसके लिए उन्होंने रात दिन एक कर दिया । स्थान स्थान पर प्रवचन करके इसके लिए धन संग्रह किया । पर कालेज खुल जाने पर उसमें ऋषि की आज्ञा के अनुकूल संस्कृत को प्रमुख स्थान न मिला । यह देखकर वे उससे अलग हो गये ।

कालान्तर में पण्डित जी ने एक उपदेशक श्रेणी खोली और अष्टाध्यायी पढ़ना पढ़ाना आरम्भ किया । इसमें छोटी बडी सभी आयु के विद्यार्थी आते थे । पण्डित जी संस्कृत का जन सामान्य में प्रचार प्रसार करना चाहते थे जिससे सभी लोग वेदों का तथा आर्ष ग्रन्थों का स्वयं अध्ययन कर सकें । पर काल को यह स्वीकार नहीं था । केवल छब्बीस वर्ष की आयु में ही १८ मार्च १८९० में उनकी मृत्यु हो गयी ।

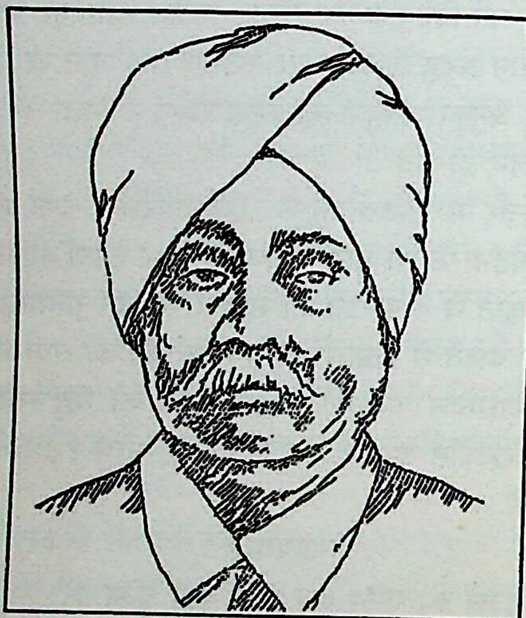
अभ्यास

(१) पं० गुरुदत्त का जन्म कब और कहाँ हुआ ?
(२) सिद्ध करो कि पं० गुरुदत्त बचपन से ही मेधावी थे ।
(३) पं० गुरुदत्त ने एम०ए० मे कौन सा विषय लिया था ?
(४) पं० गुरुदत्त की नास्तिकता कैसे दूर हुई ?
(५) पं० गुरुदत्त डी०ए०वी० की सेवा से क्यों अलग हो गये ?

प्रत्येक अच्छा कार्य पहले असम्भव होता है ।

पाठ—१७

पंजाब केसरी लाला लाजपत राय



भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में 'लाल—बाल—पाल' यह त्रयी गर्मदल की तीन मूर्ति के रूप में प्रसिद्ध है। इस त्रिमूर्ति में लाल लाला लाजपतराय का, बाल—बाल गंगाधर तिलक का और पाल—विपिन चन्द्र पाल का बोधक है। 'आज़ादी माँगने से नहीं मिलती, उसे लेना पड़ता है' इस मान्यता के कारण ही इन्हें गरम दल का समर्थक माना जाता था।

लाजपतराय का जन्म २८ फरवरी १८६५ ई० को उनके ननिहाल ढुड्डिके (जि० लुधियाना, पंजाब) में हुआ। पिता राधाकृष्ण उर्दू के बड़े विद्वान् थे तथा मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित थे जबकि माता गुलाब देवी कट्टर सिक्ख थीं। लाहौर में अध्ययन करने के समय उन्होंने

स्वामी दयानन्द का भाषण सुना और सतरह वर्ष की आयु में वे आर्यसमाज के सदस्य बन गये । उनका विवाह बारह वर्ष की ही आयु में हो चुका था जब वे मिडिल के विद्यार्थी थे ।

शिक्षा पूर्ण करके लाजपत राय ने हिसार में वकालत प्रारम्भ कर दी । वे नगर पालिका के सदस्य भी बने । वे कांग्रेस पार्टी में सन् १८८८ में सम्मिलित हुए । उस समय तक कांग्रेस स्वाधीनता की नहीं अपितु सुधार की पार्टी थी । लाजपत राय ने कांग्रेस की सामाजिक और शैक्षिक गतिविधियों का विस्तार किया और धीरे धीरे इसको भारत की स्वाधीनता के साथ जोड दिया । इसका कारण यही था कि लाजपत राय उस गुरुदयानन्द का शिष्य था जो स्वराज्य का पक्षधर था । लाला जी आर्यसमाज को अपनी माता कहा करते थे ।

सन् १९०७ में लाला लाजपत राय ने पंजाब में एक बहुत बडा किसान आन्दोलन चलाया । इसके कारण उन्हें मांडले जेल में भेज दिया गया । सन् १९१४ में वे कांग्रेस के शिष्टमण्डल के रूप में इंग्लैड गये । वे पाँच वर्ष अमेरिका भी रहे और वहाँ रहकर भारत की स्वतन्त्रता के लिए जनमत तैयार किया । १९१६ में उन्होंने इण्डियन होम रूल लीग की स्थापना की । बाद में 'यंग इण्डिया' नामक अखबार निकाला । उन्होंने अछूतोद्धार के लिए मुक्ति सेना का गठन किया । समाज सेवा के लिए 'सेवा समिति' की स्थापना की ।

भारत लौटने पर लाजपत राय ने सितम्बर १९२० में कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता की । उन्होंने 'वन्देमातरम्' नामक उर्दू दैनिक तथा 'पीपल' नामक अंग्रेज़ी साप्ताहिक ये दो अखबार निकाले । लाला जी एक सफल और प्रभाव पूर्ण वक्ता होने के साथ साथ सफल लेखक भी थे । मिस् म्यो नामक ब्रिटिश महिला ने 'मदर इण्डिया' पुस्तक द्वारा भारतीयों विशेषकर हिन्दुओं की निन्दा का जो प्रयत्न किया था उसका करारा जवाब लाला जी ने ही दिया ।

उन की पुस्तक का नाम था "फादर इंडिया" ।

सन् १९२२ में गाँधी जी द्वारा असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिये जाने पर उन्हें क्षोभ हुआ । १९२५ में वे केन्द्रीय विधान सभा के सदस्य बने । बाद में पं० मोती लाल नेहरू के स्वराज दल में सम्मिलित हो गये । किन्तु उनकी पं० नेहरू के साथ निभी नहीं ।

"क्या भारतीय स्वतन्त्रता पाने के योग्य हैं ?" यह जाँच करने के लिए आये साईमन कमीशन का देशव्यापी विरोध हुआ । तीस अक्तूबर १९२८ को उसके विरोध में लाहौर में जो प्रदर्शन हुआ उसका नेतृत्व लाला जी कर रहे थे । पुलिस ने निर्दयता पूर्वक लाठियाँ बरसाई । लाला जी के सिर और छाती पर भी ये लाठियाँ पड़ीं । इस चोट के परिणाम स्वरूप ही सतरह नवम्बर १९२८ को उनका स्वर्गवास हो गया । मरने से पूर्व उन्होंने कहा था—"मेरे शरीर पर पड़ी एक एक लाठी एक दिन ब्रिटिश साम्राज्य के कफ़न की कील सिद्ध होगी ।"

अभ्यास

(१) 'लाल–बाल–पाल' त्रयी के तीनों नाम बताओ ।
(२) लाजपतराय के माता पिता तथा जन्मस्थान का नाम बताओ ।
(३) लाजपत राय ने कांग्रेस के प्रोग्राम में क्या परिवर्तन किया ?
(४) लाजपतराय ने अछूतोद्धार के लिए क्या किया ?
(५) लाजपतराय की मृत्यु किस प्रकार हुई ?
(६) लाला लाजपत राय के गुण बताओ ।

दौड़ना व्यर्थ है मुख्य बात तो समय पर निकलना है ।

पाठ—१८

सरदार भगत सिंह

भारत माता की स्वतन्त्रता के लिए हँसते हँसते प्राणों का बलिदान करने वाले क्रान्तिकारी शहीदों में सरदार भगत सिंह का नाम अग्रगण्य है । फाँसी पर झूलने से पहले भारत माँ की वेदी पर बलि होने की असीम प्रसन्नता से इस वीर का भार बढ़ गया था । उसने 'भारत माता की जय' और 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते हुए फाँसी के फन्दे को चूमा था ।

भगत सिंह का जन्म सम्वत् १९६४ विक्रमी, आश्विन शुक्ला त्रयोदशी शनिवार को पंजाब के लायलपुर जिले के बंगा गाँव के एक आर्य परिवार में हुआ था । इनके पिता और चाचा सभी सच्चे देश भक्त थे । पिता किशनसिंह तो गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन में कई बार जेल यात्रा भी कर चुके थे । बालक के जन्म के समय ही वे बर्मा की माँडले जेल से छह मास का देश निर्वासन भुगतकर घर लौटे थे । तभी बालक का नाम 'भाग वाला' रखा गया । यह नाम ही बाद में भगतसिंह में बदल गया ।

परिवार के सभी सदस्यों के धार्मिक होने के कारण भगतसिंह को जन्म से ही धार्मिक संस्कार गाँव में मिले थे । प्रारम्भिक शिक्षा के समाप्त होने के बाद इन्हें डी०ए०वी० स्कूल लाहौर में पढ़ने के लिए भेजा गया । भगत सिंह और उसके भाई जगत सिंह दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार लाहौर में आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित लोकनाथ तर्कवाचस्पति द्वारा किया गया था । भगत सिंह के दादा अर्जुन सिंह इन पण्डित जी के घनिष्ठ मित्र थे । उन्हीं की प्रेरणा से दोनों भाइयों का यज्ञोपवीत संस्कार उन्हीं के करकमलों द्वारा कराया गया था ।

यज्ञोपवीत के इस अवसर पर अर्जुन सिंह जी ने यज्ञवेदी पर अपने संकल्प की घोषणा इन शब्दों में की थी—"मैं अपने इन दोनों बच्चों को इस यज्ञवेदी पर खड़े होकर देश सेवा के महान् यज्ञ के लिए समर्पित करता हूँ ।"

भगत सिंह बचपन से ही उत्साही, परिश्रमी और आज्ञाकारी विद्यार्थी थे । वे शिक्षा के साथ–साथ सामाजिक कार्यों में भी बड़े जोश से भाग लिया करते थे । लाहौर आने पर वे आर्यसमाज के साप्ताहिक और वार्षिक अधिवेशनों में बढ़चढ़ कर भाग लिया करते थे । आर्यसमाज अनारकली के वार्षिक उत्सव के समय नगर कीर्तन में नवयुवकों का नेतृत्व भगत सिंह ही किया करते थे । वे बड़ी मस्ती से दयानन्द और आर्यसमाज के बारे में भजन गाते थे । वाद विवाद में भी वे बड़े उत्साह से भाग लेते थे ।

सन् १९२१ में महात्मा गाँधी ने देश की स्वतन्त्रता के लिए असहयोग आन्दोलन शुरू किया । भगत सिंह उस समय दसवीं कक्षा के विद्यार्थी थे । वह स्कूल की पढ़ाई छोड़ कर अपने साथियों के साथ इस आन्दोलन में कूद पड़े ।

उन्होंने लाहौर में अपने मित्रों के साथ मिलकर "नौजवान भारत सभा" की स्थापना की । कुछ देश भक्त नौजवानों ने गाँधी जी द्वारा "चौरा चौरी आन्दोलन" स्थगित किये जाने के विरोध में गुप्त रूप से हिंसक हलचल द्वारा स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने का निश्चय किया । धीरे–धीरे बहुत से युवक इसमें शामिल हो गये । इस सभा का नेतृत्व भी भगतसिंह ने किया ।

इसी बीच भगत सिंह कानपुर में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी बटुकेश्वर दत्त से मिले और फिर दिल्ली के 'दैनिक अर्जुन' में काम करने लगे । काम के साथ ही वे अपने क्रान्तिकारी कार्यों में भी जोश के साथ भाग लेते रहे ।

भगतसिंह का रहन सहन बड़ा सादा था । खादी की पौशाक,

कुरता–पायजामा, सलवार या धोती, सिर पर ढीली पगडी, यही भगतसिंह की वेशभूषा थी । वे बडे अध्ययनशील थे । पत्र कार्य से जब भी खाली समय मिलता, तब ही क्रान्तिकारी साहित्य पढने में लग जाते ।

आठ मार्च सन् १९२९ की बात है । दिल्ली असेम्बली में वायसराय की आर्डिनेस घोषणा होते ही दो बम फूटे । यह करामात सरदार भगत सिंह और उनके साथी बटुकेश्वर दत्त ने की थी । लोग चौकन्ने हो गये । भवन धड़ाके से गूँज उठा । फिर लाहौर में इन पर अंग्रेज़ी राज के विरुद्ध षड्यन्त्र का अभियोग चला। अदालत के कटघरे से भगतसिंह 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे के साथ दहाड़ उठा । इसी अभियोग के अधीन २३ मार्च १९३१ को भारत माँ केअनोखे सपूत, देश के नौनिहाल भगत सिंह को फाँसी हुई ।

अभ्यास

(१) भगत सिंह के बाबा, पिता और भाई का नाम बताओ ।

(२) भगत सिंह ने पढाई क्यों छोडी ? वे कहाँ पढ़ते थे ?

(३) भगत सिंह के यज्ञोपवीत संस्कार के समय इनके दादा ने क्या घोषणा की ?

(४) भगत सिंह को किस अपराध पर मृत्यु दण्ड दिया गया ?

(५) भगत सिंह का बलिदान दिवस किस मास की किस तारीख को मनाया जाता है ?

प्रत्येक सन्ध्या एक नवयुवक के लिए जीवन–मरण का प्रश्न हैं ।

पाठ—१९

दयानन्द प्रशस्ति

बतायें तुम्हें हम दयानन्द क्या था,
ऋषि था मुनि था, कोई देवता था ।।१।।
अँधेरे में ठोकर जो जन खा रहे थे ।
वे गुमराह उनके लिए रहनुमा था ।।२।।
जिसे हमने गलती से समझा था दुश्मन ।
वही राष्ट्र नौका का नाविक महा था ।।३।।
निशां हिन्दुओं का मिटा जा रहा था ।
उसी की थी हिम्मत बचाया हमें था ।।४।।
निभाया था दीक्षा के व्रत को अनूठा ।
विरजानन्द का शिष्य प्यारा महा था ।।५।।
गरज कोई माने न माने मुसाफिर ।
दयानन्द दर्दे वतन की दवा था ।।६।।

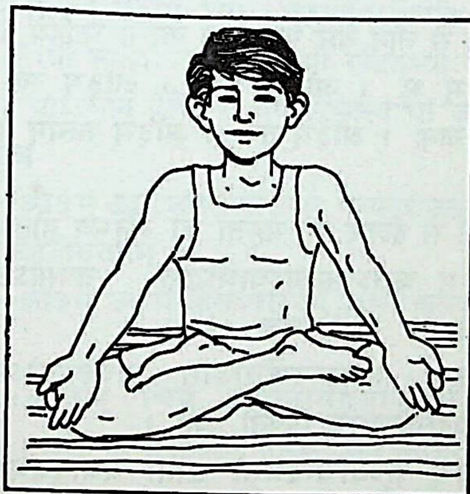
अभ्यास

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :–

(१) दयानन्द गुमराहों के लिए..................था ।
(२) दयानन्द राष्ट्र नौका का महान्...............था ।
(३) दयानन्द की............ने हिन्दुओं का निशां मिटने से बचाया ।
(४) दयानन्द.........का प्यारा शिष्य था ।
(५) दयानन्द दर्दे............की दवा था ।

पाठ—२०

सन्ध्या मन्त्रः—



आचमन मन्त्र

१ — ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः ।

इस मन्त्र को पढ़कर तीन बार आचमन करना चाहिए ।

इन्द्रियस्पर्श मन्त्र

इस मन्त्र से इन्द्रिय स्पर्श करना चाहिए ।

२—ओ३म् वाक् वाक् । ओ३म् प्राणः प्राणः । ओ३म् चक्षुः चक्षुः । ओ३म् श्रोत्रम् श्रोत्रम् । ओ३म् नाभिः । ओ३म् हृदयम् । ओ३म् कण्ठः । ओ३म् शिरः । ओ३म् बाहुभ्यां यशो बलम् । ओ३म् करतलकरपृष्ठे ।

मार्जन मन्त्र

इस मन्त्र से प्रत्येक इन्द्रिय पर जलसिञ्चन करना (छिड़कना) चाहिये ।

३—ओ३म् भूः पुनातु शिरसि । ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे । ओ३म् महः पुनातु हृदये । ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम् । ओ३म् तपः पुनातु पादयोः । ओ३म् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि । ओ३म् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ।

प्राणायाम मन्त्र

इस मन्त्र से तीन बार प्राणायाम करना चाहिये ।

४. ओ३म् भूः । ओ३म् भुवः । ओ३म् स्वः । ओ३म् महः । ओ३म् जनः । ओ३म् तपः । ओ३म् सत्यम् ।

अघमर्षण मन्त्र

इन मन्त्रों से ईश्वर की महत्ता का अनुभव होता है ।

५—ओ३म् ऋतञ्चसत्यञ्चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः ।।

६—ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोऽजायत । अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ।

७—ओ३म् सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ।।

मनसा परिक्रमामन्त्र

८—ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिताऽऽदित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।

९—ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।

१०—ओ३म् प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकूरक्षिताऽन्नमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।

११—ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताश—

निरिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।

१२—ओ३म् ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।

१३—ओ३म् ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्म : ।

उपस्थान मन्त्र

१४—ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।

१५—ओ३म् उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ।

१६—ओ३म् चित्र देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवीअन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ।

१७—ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरद शतँ, श्रृणुयाम शरदःशतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।

गुरु मन्त्र (गायत्री मन्त्र)

१८—ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।

नमस्कार मन्त्र

१९—ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

धर्मशिक्षा

पञ्चम कक्षा

प्रश्न पत्र का प्रारूप

कोई पाँच प्रश्न करो । सबके अंक समान हैं ।

(१) अपनी पाठ्य पुस्तक से ईश्वर भक्ति का कोई भजन लिखो ।

(२) महर्षि दयानन्द की प्रशस्ति सम्बन्धी कोई गीत लिखो ।

(३) सन्ध्या का कोई मन्त्र लिखो ।

अथवा

नीचे लिखे मन्त्र को सुलेख में लिखो–

----

(४) स्वाध्याय अथवा अहिंसा विषय पर लघु लेख लिखो ।

(५) शिष्टाचार सम्बन्धी कोई पाँच बातें लिखो ।

(६) आर्यकुमार की दिनचर्या का वर्णन करो ।

(७) मनुस्मृति में गायत्री जप की क्या महिमा बताई गई है ?

(८) आर्यसमाज का कोई एक नियम लिखो ।

(९) मूल शंकर घर छोड़ने को क्यों विवश हुए ?

(१०) 'महात्मा सुकरात की सहनशीलता' अथवा पं० गुरुदत्त पाठ का सार लिखो ।

पठनीय पुस्तकें

(१) सरल महाभारत — राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

(२) संन्ध्या पर व्याख्यान — आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा आर्यसमाज मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली

अध्यापकों तथा अभिभावकों से अनुरोध है कि वे बच्चों को उपर्युक्त पुस्तकें स्कूल पुस्तकालय से लेकर पढ़ने की प्रेरणा दें ।

स्कूल पुस्तकालय में उपर्युक्त पुस्तकों की पाँच पाँच तथा निम्नांकित पुस्तकों की दो दो प्रतियाँ अवश्य रहें । निम्नांकित पुस्तकों को धर्मशिक्षा के अध्यापक विषय वस्तु की व्यापकता के लिए पढ़ देखें ।

(१) धर्म शिक्षा भाग—५ — आर्यसभा अजमेर

(२) नैतिक शिक्षा भाग—५ — आर्य विद्या परिषद् आर्यसमाज हनुमान रोड़, नई दिल्ली

(३) नैतिक शिक्षा भाग—५ — गोविन्द राम हासानन्द, नई सडक, दिल्ली

(४) धर्म शिक्षा भाग—५ — आर्य विद्या सभा डी०ए०वी० मैनेजिंग कमेटी चित्रगुप्त रोड नई दिल्ली ।

ये सभी पुस्तकें आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, आर्य समाज, मन्दिर मार्ग नई दिल्ली से भी मंगाई जा सकती हैं ।

आर्य समाज के नियम

1— सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ।

2— ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य,पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है ।

3— वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म हैं ।

4— सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए ।

5— सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएँ ।

6— संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है— अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

7— सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए ।

8— अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए ।

9-- प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए ।

10— सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

मूल्य-11.00 रुपये

प्रकाशन विभाग
डी.ए.वी. कालेज प्रबन्धकर्तृ समिति
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, आर्य समाज भवन
यू० पी० ब्लॉक, पीतमपुरा, दिल्ली-110088